National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.newresearchjournal.com
ISSN: 2455-9040
Received: 04-10-2024, Accepted: 03-11-2024, Published: 18-11-2024
Volume 9, Issue 4, 2024, Page No. 25-27

श्रीमद्भागवद्गीता में ज्ञानयोग का स्वरूप

सौदामिनी गुप्ता[1], डॉ. शशिकांत मणि त्रिपाठी[2]
[1] योग स्कॉलर, योग विभाग, सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी भोपाल, मध्यप्रदेश, भारत
[2] एसोसिएट प्राध्यापक, योग विभाग, सैम ग्लोबल यूनिवर्सिटी भोपाल, मध्यप्रदेश, भारत

सारांश
मानव जीवन की इन ज्वलंत समस्याओं को दूर करने के उपाय का वर्णन भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में बहुत अच्छे प्रकार से किया है। श्रीमद्भगवद्गीता विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक, पवित्रतम एवं योगपरक ग्रंथ है। इसमें विभिन्न प्रकार के योगों की विशद विवेचना की गई है। जिसमें से कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग प्रमुख हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अपने परम शिष्य एवं शाश्वत सखा अर्जुन के सभी प्रकार के मानसिक संताप को दूर करने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश तब दिया, जब महाभारत युद्ध प्रारम्भ होने के पहले वे दोनों कुरूक्षेत्र में दोनों सेनाओं के मध्य में थे। जीवन में उत्पन्न विभिन्न प्रकार की समस्याओं के कारण मनुष्य कई प्रकार के मानसिक संताप से ग्रस्त हो जाता है। इन मानसिक संतापों को दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कई प्रकार के उपाय बताये हैं।

मूल शब्दः ज्ञान, ज्ञानयोग, श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात भगवान की दिव्य वाणी है। इसकी महिमा अपार है। इसकी उत्पत्ति युगानुकूल समस्याओं के समाधान के लिए हुई है। इसमें अर्जुन उस व्यक्ति का प्रतीक है जो आज विभिन्न प्रकार की समस्याओं से ग्रसित है। गीता यह बताती है कि आत्मा की गति अनंत है। गीता का मुख्य उपदेश योग है इसीलिए गीता को योग शास्त्र कहा जाता है। जिस प्रकार मन के तीन अंग हैं – ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। इसीलिए इन तीनों अंगों के अनुरूप गीता में ज्ञानयोग, भक्तियोग, और कर्मयोग का समन्वय हुआ है। आत्मा बन्धन की अवस्था में चल जाती है। बन्धन का नाश योग से ही सम्भव है। योग आत्मा के बन्धन का अन्त कर उसे ईश्वर की ओर मोड़ती है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति को मोक्ष का मार्ग कहा गया है। इस प्रकार गीता ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का संयोग होने के कारण योग की त्रिवेणी कही जाती है। श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्ण की शब्दमूर्ति है, ज्ञान का अथाह सागर है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता ब्राह्मी चेतना में स्थित होकर कही है।

ज्ञान का अर्थ परिभाषा

ज्ञानयोग दो शब्दों से मिलकर बना है – 'ज्ञान' और 'योग'। ज्ञान शब्द का अर्थ है – जानना, अनुभव और बोध होना। ज्ञान शब्द की उत्पत्ति "ज्ञ" धातु से हुई है, जिसका तात्पर्य है– जानना। इस जानने में केवल वस्तु के आकार–प्रकार का ज्ञान समाहित नहीं है, वरन् उसके वास्तविक स्वरूप की अनुभूति भी समाहित है।
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार – "ज्ञान बहुमूल्य रत्नों से भी अधिक मूल्यवान है, ज्ञान आत्मा का प्रकाश है, जो सदा एक रस और बंधनों से मुक्त रहने वाला है।"[1]
एस. आर. रंगनाथन के शव्दों में – " ज्ञान सभ्यता संरक्षित सूचना का समग्र योग होता है।"[2]

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान का स्वरूप

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में बताया है कि क्षेत्र – क्षेत्रज्ञ को तत्व से जान लेना ही वास्तविक ज्ञान है । वे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ जैसे हैं उसको संक्षेप में सुनने के लिए कहते हैं । परमात्मा के साथ आत्मा की एकता का प्रतिपादन करके क्षेत्र–क्षेत्रज के ज्ञान को ही ज्ञान बतलाते हुए जगत के पालक भगवान श्रीहरि विष्णु श्रीमद्भगवद्गीता के तेरहवें अध्याय में अर्जुन को अपने कल्याणकारी स्वर में कहते हैं –

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।[3]

अर्थात् हे अर्जुन ! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मुझे ही जान और क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ को अर्थात् विकार सहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्व से जानना है, वह ज्ञान है – ऐसा मेरा मत है।
यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण का यह आशय है कि इन सभी शरीर रूपी क्षेत्रों का ज्ञाता निश्चित रूप से मुझे ही समझ और इस शरीर तथा इसके ज्ञाता को जान लेना ही ज्ञान कहलाता है, ऐसा मेरा विचार है।

ज्ञान प्राप्ति का मार्ग

महापुरुषों के प्रति समर्पण एवं जिज्ञासा को ज्ञान प्राप्ति का उपाय बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से अपनी भावपूर्ण वाणी से कहते हैं –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥[4]

अर्थात उस ज्ञान को तू तत्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझने का प्रयत्न कर, उनके प्रति पूर्ण–रूप से शरणागत होकर सेवा करके विनीत–भाव से जिज्ञासा करने पर वे तत्वदर्शी ब्रह्म–ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्व–ज्ञान का उपदेश करेंगे।
यहाँ भगवान् ज्ञान प्राप्ति का मार्ग बताते हुए अर्जुन से कहते हैं कि जो परम सत्ता का ज्ञान है, परम सत्य का ज्ञान है उस परम ज्ञान को तुम केवल गुरू के पास जाकर ही प्राप्त कर सकते हो। केवल गुरू ही तुम्हें उस परम सत्य का ज्ञान करा सकते हैं उसके लिए तुम्हें गुरू को समझने का प्रयत्न करना पड़ेगा, गुरु के प्रति सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर बिना किसी प्रश्न के उनकी हर आज्ञा का पालन करो। अपने स्वभाव में विनम्रता लाकर उस परम ज्ञान को प्राप्त करने में जिज्ञासा उत्पन्न करो, तभी वे तत्वदर्शी ब्रह्मज्ञानी महात्मा तुम्हें उस परम सत्य का तत्व–ज्ञान का उपदेश करेंगे।

ज्ञान का परिणाम

जो ज्ञान समस्त कर्मों को भस्म कर दे, ऐसे ज्ञान की प्राप्ति के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने विभिन्न उपायों का वर्णन किया है। साथ ही उसके परिणाम तथा महत्ता पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते कहकर ज्ञान की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है। इसी तरह उन्होंने ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए चौथे अध्याय के तैंतीसवें श्लोक में ज्ञान यज्ञः परंतपः कहकर ज्ञानयज्ञ को अन्य यज्ञों से श्रेष्ठ घोषित किया है तथा उसका परिणाम भी बताया है जो इस प्रकार है –

महापुरुषों से परमात्मा के तत्वज्ञान का उपदेश प्राप्त होने के पश्चात् ज्ञानयोगी इस जगत के सम्पूर्ण प्राणियों में अपने आत्म स्वरूप का ही विस्तार देखता है। उसका भाव 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का हो जाता है। वह समस्त प्राणियों में स्वयं का ही अनुभव करता है। ऐसा अनुभव प्राप्त करके ही वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञान का परिणाम बताते हुए अर्जुन से कहते हैं–

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भुतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥[5]

अर्थात् हे पाण्डुपुत्र ! उस तत्व–ज्ञान को जानकर फिर तू कभी इस प्रकार के मोह को प्राप्त नही होगा तथा इस ज्ञान के द्वारा आचरण करके तू सभी प्राणीयों में अपनी ही आत्मा का प्रसार देखकर मुझ परमात्मा में प्रवेश पा सकेगा।

यहाँ भगवान् वासुदेव अर्जुन से कहते हैं कि जब ज्ञानी महात्माओं के उपदेश से तुम परमात्मा के स्वरूप को भली–भांति जान लोगे और उस ज्ञान को आत्मसात कर लोगे तब तुम्हें किसी भी प्रकार का मोह नहीं रहेगा और तुम्हें मोहवश होने वाला शोक भी नहीं रहेगा। जिससे तुम सम्पूर्ण प्राणियों में परमात्मा के स्वरूप को ही देख पाओगे। जिस प्रकार रात के समय सभी ओर अंधकार छाया रहता है परन्तु जब सुरोदय होता है तो वही अंधकार पूर्ण रूप से मिट जाता है और सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यहाँ कहने का तात्पर्य यह है कि सभी में एक आत्मतत्व का अनुभव होने से मोह से ऊपर हो जाएगा तथा सबको परमात्मा के रूप में अनुभव करेगा। अपने को देखने से, आत्मा–परमात्मा का एक रूप अनुभव होने से आत्मा, अन्य प्राणी और भगवान् का त्रिविध भेद नष्ट हो जाता है।

ज्ञान की पवित्रता

इस जगत में जितने भी शुभ कर्म हैं यथा यज्ञ, दान, धर्म, व्रत, उपवास, जप– ध्यान, पूजा–पाठ, तीर्थयात्रा आदि। इनमें से कोई भी शुभ कर्म यथार्थ ज्ञान की बराबरी नहीं कर सकते। क्योंकि ये सभी शुभ कर्म तत्वज्ञान प्राप्त करने के सहयोगी मात्र हैं। ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होने के कारण पवित्र माने गए हैं। व ज्ञान अतिशय पवित्र होता है और शुद्ध अन्तरूकरण वाले कर्मयोगी को अपने आप तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है यह कथन अर्जुन को समझाते हुए भगवान विश्वम्भर श्रीमद्भगवद्गीता के चौथे अध्याय में उसे अपनी ज्ञानमयी वाणी से मोहित करते हुए कहते हैं –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥[6]

अर्थात इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसंदेह कुछ भी नहीं है, इस ज्ञान को तू स्वयं अपने हृदय में योग की पूर्णता के समय अपनी ही आत्मा में अनुभव करेगा।

यहाँ भगवान् स्वयं ही ज्ञान के विषय में बड़े ही स्पष्ट रूप से कहते हैं कि इस संसार में सर्वाधिक पवित्र यदि कुछ है तो वह ज्ञान ही है। इसमें कोई संदेह नहीं है। इससे अधिक पवित्र और कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान अंतःकरण को भी पवित्र कर देता है। यहाँ 'कालेनात्मनि' शब्द का अर्थ है – अपने आप समय आने पर। भगवान् कहते हैं जब तुम योग में पारंगत हो जाओगे तब स्वयं उस ज्ञान को समय आने पर अपने भीतर प्राप्त कर लोगे।

ज्ञानयोग की श्रेष्ठता

कर्म और ज्ञान परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। ज्ञान और कर्म की श्रेष्ठता के विषय में अपनी शंका बतलाकर व भगवान से अपना ऐकान्तिक श्रेयसाधन बतलाने के लिये प्रार्थना करते हुए पृथापुत्र अर्जुन श्रीमद्भगवद्गीता के तीसरे अध्याय के प्रारम्भ में विनीत स्वर में योगेश्वर श्रीकृष्ण से कहते हैं हे केशव यदि आपको कर्म की अपेक्षा ज्ञान(श्रेष्ठ) मान्य है, तो फिर मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हो? अर्थात् कर्म की अपेक्षा ज्ञान से ही मेरा मार्ग प्रशस्त करे। अर्जुन कहते हैं –

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥[7]

अर्थात् अर्जुन बोले हे जनार्दन ! अगर आप कर्म से बुद्धि (ज्ञान) को श्रेष्ठ मानते हैं तो फिर हे केशव ! मुझे घोर कर्म में क्यों लगाते हैं ?

यद्यपि लौकिक परम्परा कार्य करने से पहले ज्ञान उपदेश होता है फिर कर्म की परिणति। किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता एक श्रेष्ठ दार्शनिक विचारधारा का ग्रन्थ है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने पहले कर्म का उपदेश दिया। फिर कर्म करने हेतु ज्ञान का। यहाँ स्पष्ट है कि ज्ञान की जब तक जिज्ञासा न हो तब तक ज्ञान का उपदेश सार्थक नहीं है। क्योंकि ज्ञान श्रद्धा का विषय है – श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।

त्रिविध ज्ञान

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में ज्ञान के तीन प्रकार बताये हैं–

1. सात्विक ज्ञान: सात्विक ज्ञान के लक्षण बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् वासुदेव अर्जुन से अपनी ज्ञानमयी वाणी से कहते हैं –

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्॥[8]

अर्थात् जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक–पृथक सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मभाव को विभागरहित समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तू सात्त्विक जान।

2. राजसिक ज्ञान: राजस ज्ञान के लक्षण बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् नारायण अर्जुन से अपनी सुमधुर वाणी से कहते हैं –

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥[9]

अर्थात् किन्तु जो ज्ञान अर्थात जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतों में भिन्न–भिन्न प्रकार के नाना भावों को अलग–अलग जानता है, उस ज्ञान को तू राजस जान।

3. तामसिक ज्ञान: तामस ज्ञान का लक्षण बताते हुए श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् जगन्नाथ अर्जुन को अपने ज्ञान से परिपूर्ण स्वर में कहते हैं –

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पंच तत्तामसमुदाहृतम् ॥[10]

अर्थात् परन्तु जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीर में ही सम्पूर्ण के सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्तिवाला, तात्त्विक अर्थ से रहित और तुच्छ है – वह तामस कहा गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य समस्त प्राणियों को और स्वयं अपने को अविनाशी परमात्मा से अभिन्न समझता है। समस्त जीवों में एक ही आत्मा है, यद्यपि शरीर भिन्न–भिन्न हैं, ऐसा मानता है। सभी प्राणियों में एक ही आत्मा देखता है, वह सात्विक ज्ञान है, वास्तविक ज्ञान है। जिस ज्ञान से मनुष्य भिन्न–भिन्न प्राणियों में भिन्न–भिन्न जीवात्मा को देखता है, सृष्टि के समस्त पदार्थों में विविधता और अनेकता को देखता है, वह राजसिक ज्ञान है। राजसिक ज्ञान द्वैतभाव का दर्शन करता है। और जिस ज्ञान से मनुष्य स्वयं को ही सम्पूर्ण मानता है तथा अन्य प्राणियों को तुच्छ समझता है, अपने शरीर को ही सब कुछ मानता है तथा आत्मा एवं इश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता अपितु स्वयं को सर्वश्रेष्ठ समझता है, वह तामसिक ज्ञान है। ऐसा ज्ञान वास्तव में ज्ञान नहीं है।

उपसंहार

ज्ञानयोग की अवधारणा का वर्णन पहली बार श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है, जो अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है, जो दुख से मुक्ति पर केंद्रित है। यद्यपि ज्ञान योग में शास्त्रों का प्रगतिशील अध्ययन शामिल है, यह पूरी तरह से सैद्धांतिक नहीं है, इसमें व्यावहारिक, अनुभवात्मक ज्ञान शामिल है जो ध्यान प्रशिक्षण से उत्पन्न होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञानयोग मानव कल्याण के रूप में वर्णित है। श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मबन्धनों से मुक्त होना या सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाना ज्ञानयोग है। अत: ज्ञानयोग का स्वरूप भी अत्यन्त व्यापक माना जा सकता है।

संदर्भ सूची

1. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, ज्ञानयोग की साधना, युग निर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि मथुरा, वर्ष 2019, पृष्ठ 4
2. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, ज्ञानयोग की साधना, युग निर्माण योजना प्रेस, गायत्री तपोभूमि मथुरा, वर्ष 2019, पृष्ठ 4
3. श्रीमद्भागवद्गीता 13.3
4. श्रीमद्भागवद्गीता 4.34
5. श्रीमद्भागवद्गीता 4.36
6. श्रीमद्भागवद्गीता 4.40
7. श्रीमद्भागवद्गीता 3.2
8. श्रीमद्भागवद्गीता 18.20
9. श्रीमद्भागवद्गीता 18.21
10. श्रीमद्भागवद्गीता 18.22